जैन धर्म के मूल तत्त्व : एक परिचय

□ श्री स्वरूपसिंह चूण्डावत, एडवोकेट
[उपाध्यक्ष, विद्याप्रचारणी सभा, भूपाल नोबल्स महाविद्यालय, उदयपुर]

जैन धर्म एक अत्यन्त ही प्राचीन धर्म है। प्राचीन ही नहीं, किन्तु एक वैज्ञानिक धर्म भी है। इसकी प्राचीनता, इसका दर्शन, इसकी तर्क-प्रणाली प्राणीमात्र के लिये उपयोगी है। इसमें परिमाणु, अणु इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनको आज का आधुनिक विज्ञान भी नये वैज्ञानिक प्रयोगों के साथ लाभान्वित पाता है। इसका जीवन-दर्शन संसार की कई समस्याओं को सुलझाने के लिये आज भी उपयोगी है। इस सबके पीछे उसका एक दर्शन है, उस दर्शन में ही उसके मूल तत्त्व सन्निहित हैं।

जैन दर्शन के प्रमुख प्रमेय उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य हैं। उत्पाद का अभिप्राय यह है कि सृष्टि में जो कुछ है वह पहले से ही उत्पन्न है तथा जो नहीं है उससे किसी भी तत्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती। व्यय का अर्थ इस बात से है कि प्रत्येक पदार्थ अपने पूर्व पर्याय (रूप) को छोड़ कर क्षण-क्षण नवीन पर्यायों को धारण कर रहा है और ध्रौव्य यह विश्वास है कि पदार्थों के रूपान्तर की यह प्रक्रिया सनातन है, उसका कभी भी अवरोध या नाश नहीं होता। वह उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य इस प्रकार विलक्षण है। कोई भी पदार्थ चेतन हो या अचेतन इस नियम का अपवाद नहीं है।

जैन धर्म यह मानता है कि सृष्टि अनादि है और वह जिन छह तत्त्वों से बनी है, वे तत्त्व भी अनादि हैं। वे छह तत्त्व हैं—(१) जीव, (२) पुद्गल, (३) धर्म, (४) अधर्म, (५) आकाश व (६) काल। इन छह तत्त्वों में केवल पुद्गल ही ऐसा तत्त्व है जिसका हम रूप देख सकते हैं बाकी सभी ऐसे हैं जो अमूर्त हैं; जो रूपवान नहीं हैं। इन छः तत्त्वों में जीव ही एक ऐसा है जो चेतन है बाकी ५ तत्त्व निर्जीव हैं, अचेतन हैं। तीसरी बात यह है कि संसार में जीव पुद्गल के बिना ठहर नहीं सकता। पुद्गल के सहवास से उसको छुटकारा तब मिलता है जब वह संसार के बन्धनों से छूट जाता है। असल में जीव के जैन दर्शन में वही गुण हैं जो आत्मा के लिये वेदान्त में कहे गये हैं।

जो मूर्त द्रव्य अर्थात् पुद्गल है वह परमाणुओं के योग से बना है और यह सारी सृष्टि ही परमाणुओं का समन्वित रूप है। जीव व पुद्गल मुख्य द्रव्य हैं क्योंकि उन्हीं के मिलन से यह सृष्टि में जीवन देखने में आता है। आकाश वह स्थान है जिसमें सृष्टि ठहरी हुई है। जीव व पुद्गल में गति कहाँ से आती है, इसका रहस्य समझाने के लिये धर्म की कल्पना की गई है। धर्म वह अवस्था है जिसमें जीव व पुद्गल को गति मिलती है। धर्म उसको सम्भव बनाता है। इसी प्रकार चलने वाली चीज जब ठहरना चाहती है तब कोई न कोई आधार चाहिए। सक्रिय द्रव्य के ठहरने को संभव बनाने वाला गुण ही अधर्म है। धर्म व अधर्म वे गुण हैं जो विश्व को क्रमशः गति-स्थितिशील रखते हैं और उसे अव्यवस्था में गिरफ्तार होने से बचाते हैं। काल की कल्पना इसलिए की गई है कि जैन धर्म संसार को माया नहीं मानता, जैसे शांकर मत में वह माना जाता है। संसार सत्य है और इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। इस परिवर्तन का आधार काल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन के छः द्रव्यों में से सिर्फ धर्म व अधर्म ही ऐसे हैं जिनका वैदिक धर्म ग्रंथों में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। बाकी जीव, पुद्गल, काल व आकाश ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में अन्यत्र भी आये हैं। यह बहुत कुछ पंच तत्त्वों के समान हैं जिनसे वैदिकों के अनुसार सृष्टि हुई है।

वैदिक जैसे स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर की सत्ता में विश्वास करते हैं उसी प्रकार जैन दर्शन के अनुसार भी हमारे स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म कर्म-शरीर है। स्थूल शरीर के छूट जाने पर भी यह कर्म-शरीर जीव के साथ रहता है और वही उसे फिर अन्य शरीर धारण कराता है। आत्मा की मनोवैज्ञानिक चेष्टाओं—वासना, तृष्णा, इच्छा आदि से इस कर्म-शरीर की संपुष्टि होती है। इसलिए कर्म-शरीर तभी छूटता है जब जीव वासनाओं से ऊपर उठ जाता है, जब उसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं रह जाती। जैन दर्शन में मोक्ष की व्यवस्था यही है। इस प्रकार उपरोक्त दर्शन जैन धर्म की तत्त्वमीमांसा (Metaphysics) है।

जैन दर्शन का इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण पहलू उसका कर्तव्यशास्त्र (Ethics) है। जीवन का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है; पर उसका मार्ग है। जैन दर्शन के सात तत्त्व हैं। वे हैं—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। कुछ ने इसमें पाप व पुण्य जोड़ कर ९ कर दिए हैं। जैन दर्शन आस्रव के सिद्धान्त में विश्वास करता है जिसका अर्थ है कि कर्म के संस्कार क्षण-क्षण प्रवाहित हो रहे हैं, जिनका प्रभाव जीव पर पड़ रहा है। इन्हीं से जीव अजीव से बँध जाता है। अतएव इसको मिटाने का उपाय यह है कि साधक इनसे अलिप्त रहने का प्रयास करे। यह प्रक्रिया संवर कहलाती है। किन्तु यह भी पर्याप्त नहीं है। आत्मा को पूर्वार्जित संस्कार भी घेरे हुए हैं। इनसे छूटने की साधना का नाम निर्जरा है। जीवन नौका में छेद है जिससे पानी उसमें भरता जा रहा है। इन छेदों को बन्द करने का नाम ही संवर है किन्तु नाव में जो पानी भरा हुआ है उसको उलीचने नाम निर्जरा है। संवर और निर्जरा द्वारा जिसने अपने को संस्कारों अथवा आस्रवों से मुक्त कर दिया, वही मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार यह मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है। मोक्ष जीवन का अंतिम ध्येय है। जिसने मोक्ष प्राप्ति करली वह स्वयं परमात्मा है। जो आत्मा सिद्ध अथवा मुक्त हो गयी वह चार गुणों से युक्त होती है। यह गुण हैं—अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य।

इस प्रकार जैन दर्शन ने तत्त्व मीमांसा (Metaphysics) व कर्तव्य-शास्त्र (Ethics) ही नहीं किंवा तर्क-शास्त्र को भी एक अद्भुत देन दी है जो संभवतः तर्क प्रणाली में सर्वश्रेष्ठ है। वह है—अनेकान्तवाद व स्याद्वाद। यह प्रणाली सत्य की खोज में अपूर्व है पर साथ ही अहिंसा के विकास का भी चरम बिन्दु है।

अहिंसा का आदर्श आरम्भ से ही भारत के समक्ष रहा था किन्तु इसकी चरम सिद्धि इसी अनेकान्तवाद में हुई। विपक्षी की बात भी सत्य हो सकती है। सत्य के अनेक पहलू हैं। यह बौद्धिक अहिंसा ही जैन तर्क-प्रणाली है जो अनेकान्तवाद है। यही आगे जाकर स्याद्वाद हुई। इस सिद्धान्त को देखते हुए ऐसा लगता है संसार को आगे चलकर जहाँ पहुँचना है, भारत वहाँ पहले ही पहुँच चुका था। संसार में आज जो खतरे व अशान्ति है, उसका कारण क्या है? मुख्य कारण यह है कि एक वाद के मानने वाले दूसरे वादों को मानने वालों को एकदम गलत समझते हैं। साम्यवादी समझते हैं कि प्रजातंत्री एकदम गलत हैं और प्रजातंत्र के समर्थकों की मान्यता है कि सारी गलती साम्यवादियों की है। इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो कोलाहल है इसका मूल कारण यह है कि लोग विरोधियों के प्रति अत्यन्त असहिष्णु हो गये हैं फिर भी सत्य यह है कि कोई भी मत न तो सोलह आने सत्य है और न सोलह आने असत्य है। इसलिये आँख मूँदकर किसी के मत को खण्डित करना—जैन सिद्धान्तों के अनुसार, जिसको वह अनेकान्तवाद कहते हैं, एक प्रकार की हिंसा है, घोर मिथ्यात्व है। समन्वय, सहअस्तित्व और सहिष्णुता—ये एक ही तत्त्व के अनेक नाम हैं। इसी तत्त्व को जैन दर्शन शारीरिक धरातल पर अहिंसा और मानसिक धरातल पर अनेकान्तवाद कहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तवाद का दार्शनिक आधार यह है कि प्रत्येक वस्तु अनंत गुण-पर्याय व धर्मों का अखण्ड पिण्ड है। वस्तु को हम जिस दृष्टिकोण से देख रहे हैं, वस्तु उतनी ही नहीं है। उसमें अनंत दृष्टिकोणों से देखे जाने की क्षमता है। उसका विराट स्वरूप अनंतधर्मात्मक है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मालूम होता है उस पर ईमानदारी से विचार करो तो उसका विषयमूल धर्म भी विद्यमान है, चित्त से पक्षपात की दुरभिसंधि निकालो और दूसरे के दृष्टिकोण के विषय को भी सहिष्णुतापूर्वक खोजो, वह भी मौजूद है। आधुनिक वैज्ञानिक आइन्स्टीन का सापेक्षवाद इसी का वैज्ञानिक रूप है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेकान्तवाद की खोज भारत की न्याय प्रणाली का चरम उत्कर्ष है और सारा संसार इसको जितना अपनायेगा, विश्व में शान्ति भी उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी। स्याद्वाद भी लगभग यही है।

जैन धर्म का त्रिरत्न (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) धर्माचरण की जीवन पद्धति है। गीता में कृष्ण ने इसको ज्ञान, कर्म व भक्ति कहा है। त्रिरत्न में पहला स्थान सम्यक्दर्शन का है जिसके पालन के लिए आवश्यक है मनुष्य तीन प्रकार की मूढ़ताओं व आठ प्रकार के अहंकारों का विसर्जन करे। यह तीन मूढ़ताएँ हैं—(१) लोकमूढ़ता; (२) देवमूढ़ता व (३) पाखण्डमूढ़ता। नदियों में स्नान करने से पुण्य होता है, यह लोकमूढ़ता का उदाहरण है। रागी-द्वेषी देवताओं को वीतराग मानना देवमूढ़ता है और साधु फकीरों के चमत्कारों में विश्वास करना पाखण्डमूढ़ता है। जैन धर्म में यह सभी अन्धविश्वास त्याज्य हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व के प्रथम बुद्धिवादी (Rationalist) भगवान महावीर हैं। ग्रीक दार्शनिक उनसे २०० वर्ष बाद में है। यह न केवल जैन धर्म किन्तु भारत के लिए भी गौरव की बात है। इसी प्रकार मुमुक्षु को ८ प्रकार के अहंकारों को छोड़ना अनिवार्य है। (१) अपनी बुद्धि का अहंकार; (२) अपनी धार्मिकता का अहंकार; (३) अपने वंश का अहंकार; (४) अपनी जाति का अहंकार; (५) अपने शरीर व मनोबल का अहंकार; (६) चमत्कार दिखाने वाली शक्तियों का अहंकार; (७) अपने योग व तपस्या का अहंकार; (८) अपने रूप व सौन्दर्य का अहंकार। इतनी तैयारी हो लेने पर ही साधक को सम्यक्-ज्ञान व सम्यक्चारित्र प्राप्त होता है। इन त्रिरत्न के साथ ५ (पाँच) अणुव्रत व महाव्रत भी जैन धर्म के आधार स्तम्भ हैं। यह हैं—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह। यह अणुव्रत गृहस्थ के लिये अनिवार्य हैं किन्तु इनका कठोरता से पालन करना महाव्रत है जो श्रमणों के लिये है। जैन धर्म में मनुष्य के विकास के १४ गुण-स्थानों का भी वर्णन है जो जीवन विकास की प्रक्रिया है। मनुष्य ज्ञान व चारित्र में विकास करते-करते जब १३वें गुणस्थान में पहुँच जाता है तब उसको केवलज्ञान हो जाता है और फिर मोक्ष प्राप्ति हो जाती है, वह आवागमन के चक्र से छूट जाता है। इसी प्रकार जीवन को मलीन करने वाले कषायों का भी वर्णन है जिन पर विजय प्राप्त करना जरूरी है। ऊपर जो कुछ इतिहास लिखा गया है वह जैन धर्म के दार्शनिक व व्यावहारिक पहलू पर ही लिखा गया है किन्तु थोड़ा-सा ऐतिहासिक पहलू व उसके योगदान पर भी लिखना समीचीन होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि जैन पन्थ का मूल उन प्राचीन परम्पराओं में रहा होगा जो आर्यों के आगमन से पहले यहाँ प्रचलित थीं पर इसे न मानकर, आर्यों के आने के बाद ही जैन परम्परा मानें तो भी ऋषभदेव व अरिष्टनेमि को लेकर जैन परम्परा वेदों तक पहुँचती है। महाभारत युद्ध के समय इस सम्प्रदाय के नेता नेमिनाथ थे जिन्हें जैन अपना २२वाँ तीर्थंकर मानते हैं। ईसवी पूर्व ८वीं सदी में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए जिनका जन्म काशी में हुआ था। जैन धर्म का पहला श्रमण संगठन पार्श्वनाथ ने किया। ये श्रमण वैदिक प्रथा के विरुद्ध थे और महावीर व बुद्ध के काल में जैन व बौद्ध होकर इन दो धर्मों में विलीन हो गये।

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर वर्धमान हुए, जिनका जन्म ईसवी पूर्व ५९९ में हुआ था। वे ७२ वर्ष की अवस्था में मुक्त हुए। महावीर ने निर्वाण के पहले जैन धर्म को परिपुष्ट कर दिया। जब सिकन्दर भारत आया था तब उसे जैन साधु सिन्धु के तट पर तपस्यारत मिले थे। इतिहासवेत्ताओं की मान्यता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य मृत्यु से पहले जैन हो गया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईसा की पहली सदी में आकर जैन धर्म दो सम्प्रदायों में बँट गया—दिगम्बर व श्वेताम्बर। ११वीं सदी में चालुक्य वंश के गुजरात के राजा सिद्धराज व उसके पुत्र कुमारपाल ने जैन धर्म को स्वीकार कर राजधर्म बना दिया और उसका व्यापक प्रचार किया। प्राकृत भाषा के व्याकरण के महाविद्वान तथा अनेक संस्कृत ग्रन्थों के रचयिता आचार्य हेमचन्द्र सूरि इनके समकालीन थे।

राजस्थान के सभी राज्यों ने करीब १४०० वर्ष तक जैन धर्म को आश्रय व प्रश्रय दिया। चित्तौड़ में कई जैन विद्वान हुए जिनमें आचार्य हरिभद्र सूरि प्रमुख भी थे। मुगल सम्राट् अकबर ने भी जैन विद्वानों का आदर किया व उपदेश सुने। फिर जीवहिंसा रोकने को फरमान भी निकाले।

१६वीं सदी में आकर जैन धर्म में मूर्ति-पूजा के विरुद्ध एक सम्प्रदाय और खड़ा हुआ जो साधुमार्गी कहलाता है। १८वीं सदी में तेरापन्थ सम्प्रदाय इसी में से निकला। इस देश की भाषागत उन्नति में जैन आचार्य सहायक रहे हैं। ब्राह्मण अपने धर्म ग्रन्थ संस्कृत में लिखते थे और बौद्ध पालि में, पर जैन मुनियों ने प्राकृत के अनेक रूपों का उपयोग किया और प्रत्येक काल व क्षेत्र में जो भाषा चालू थी उसका उपयोग किया। इस प्रकार आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में जैन मुनियों का अनुपम योगदान है। एक तरह से कह सकते हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं का आदि साहित्य अधिकतर जैन मुनियों द्वारा लिखा गया है। केवल यही नहीं, संस्कृत में भी व्याकरण, छन्द शास्त्र, कोष और गणित सम्बन्धी जैनाचार्यों के ग्रन्थ मिलते हैं।

आज भी जैन गृहस्थ दान देकर कई सार्वजनिक संस्थाएँ खड़ी कर रहे हैं और जैन मुनियों का आज भी जन सेवा व साहित्य सेवा में अनुपम योगदान है।

□

सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिसु,
स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तिसम्पदः।
तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता,
जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः॥

—आचार्य सिद्धसेन

जहाँ-जहाँ जो भी सूक्ति-सम्पदाएँ स्फुरित हो रही हैं, वे सब निःसन्देह आपके ही पूर्व—प्रवचन-समुद्र से उछलती हुई बूँदें हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org